SANGAM International Journal of Multidisciplinary Research

Vol. 03, Issue 01, September (2025) **E-ISSN: 2584-086X**
https://doi.org/10.5281/zenodo.17596518

केदारनाथ सिंह के काव्य में गाँव

सत्यनारायण मीणा[1], डॉ. रेखा शेखावत[2]

[1]शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, संगम विश्विद्यालय, भीलवाड़ा (राज.) एवं सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, देवली (टोंक)
[2]सहायक आचार्य, हिन्दी-विभाग, संगम विश्विद्यालय, भीलवाड़ा (राज.)

Corresponding Author: *sattukhanwas@gmail.com Mo.:9001101755*

Available online at: www.sijmr.org

Received: 08-08-2025, Accepted: 17-09-2025, Online: 30-09-2025

Abstract— केदारनाथ सिंह की ग्रामीण जीवन पर आधारित कविताएँ भोजपुरी के लोक अंचल से अपनी विषयवस्तु और संवेदनाएँ ग्रहण करती हैं। वे लोकजीवन की बोली, मुहावरों,शब्दों, लोकगीतों को कविता में ढालते हैं। 'पंचतंत्र' की शैली के अनुकरण में कविताओं का सृजन करते हैं। ग्रामीण जीवन पर लिखी कविताओं में प्रकृति, पशु-पक्षी, पर्यावरणीय चिंताएँ, परिवेश लोकजीवन, सामूहिकता की भावना, मानवीय संवेदनाओं आदि की सशक्त उपस्थिति है। उनके ग्रामीण जीवन के पात्र जीवंत लगते हैं। किसानी संस्कृति के चित्र, आशा-आकांक्षा, उनके दुःख-दर्द कविता में अभिव्यक्त हुए हैं। केदारनाथ सिंह की कविताओं में गाँव का नकारात्मक पक्ष भी आया है। गाँव से शहर की और पलायन को वे एक बड़ी समस्या के रूप में देखते हैं। जातिवाद, स्त्रियों के प्रति पितृसत्तात्मक सोच, अभाव, पिछड़ापन जैसी समस्याओं पर भी उन की दृष्टि जाती है। गाँव पर लिखी कविताएँ पाठक की मानवीय संवेदनाओं को जगाती हैं।

Keywords*— *लोकजीवन, सामूहिकता, प्रकृति, पलायन, पित्रसत्ता, अभाव, पिछड़ापन।

केदारनाथ सिंह स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के अकेले ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं में गाँव और शहर दोनों सामानांतर रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। वे शहर में रहते हुए गाँव पर लिखते हैं। उनका कवि मन बार-बार शहर से गाँव की ओर भागता है। किसान परिवार में जन्मे केदारनाथ सिंह का बचपन भोजपुरी अंचल के लोकजीवन में व्यतीत हुआ। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा है– "मेरा गाँव गंगा और सरयू (घाघरा) के बीच में है– दोनों से कोई तीन या चार किलोमीटर की दूरी पर! पहले जब बाढ़ आती थी तो दोनों नदियाँ आपस में मिल जाती थीं और बीच का सारा अंतराल लगभग समुद्र बन जाता था"[1] उनका गाँव 'चकिया' उनकी कविताओं में निरन्तर उपस्थिति दर्ज कराता है। 'गाँव आने पर' कविता में उन्होंने लिखा है–

"एक बूढ़े पक्षी की तरह लौट-लौट कर
मैं क्यों चला आता हूँ बार-बार ?
पृथ्वी पर ऊब
क्या उतनी ही पुरानी है
जितनी दूब ?"[2]

यहाँ स्वयं से ही प्रश्न हैं और उत्तर भी। इस कविता में अनेक भाव–विचार समाहित हैं। गाँव-बस्ती का व्यक्ति शहर की जिन्दगी में अकेलापन और ऊब महसूस करेगा तो लौट कर कहाँ जायेगा ? स्वाभाविक रूप से वह अपने मूल की ओर लौटेगा। मध्यकालीन भक्त कवि सूरदास का मन भी कृष्ण भक्ति में 'जहाज़ के पंछी' के जैसे पुनः लौट-लौट कर आता है। अपने मूल स्थान, अपने गाँव से लगाव-जुड़ाव होने पर ही ऐसा महसूस होता है–

"यह हवा
मुझे घेरती क्यों है ?
क्यों यहाँ चलते हुए लगता है
अपनी साँस के अन्दर के
किसी गहरे भरे मैदान में चल रहा हूँ
कौन हैं ये लोग
जोकि मेरे हैं ?" [3]

शहर की सीमाएँ जहाँ ख़त्म होती हैं, वहीं से शुरू होता है– भारत का देहाती जीवन। जहाँ कवि के शब्दों में, देखे जा सकते हैं– 'बूढ़े दालान में बैठे हुक्का पीते, बारिश को देखते हुए' और दिख जाती है– 'उपले बटोरती हुई एक स्त्री', साथ में 'बूंदें, गिरती हुई भैंस की पीठ पर' और 'जगरनाथ काका' जो हर गाँव में अलग–अलग संज्ञा के साथ उपस्थित होते हैं। एक 'बिना नाम की नदी', नदी पर बना 'मांझी का पुल' जो जोड़ता है– लोगों को आपस में, साथ ही उनकी भावनाओं को भी। गाँव जहाँ 'दूर किसी शहर से आता था डाकिया, थैला लटकाए हुए हर बुधवार को'। गाँव जहाँ पिछड़ापन है, 'जहाँ कीचड़ अपनी जगह है, बुखार अपनी जगह,' दिन भर भूसे के बारे में, रातभर ईश्वर के बारे में सोचता बैल रुपी किसान', गोर्की की 'माँ' की याद दिलाती 'टमाटर बेचती बुढ़िया', 'बोझे' ढोते किसान, खेतिहर मजदूर 'लालमोहर' जो बैल की जगह खुद जुए में लगकर मालिक का खेत जोतता है। आलोचक

© 2025, SIJMR All Rights Reserved

नामवर सिंह ने लिखा है, "गाँवों के जीवन में घुसते ही प्रगतिशील कवि अपनी वैक्तिकता भूलकर गाँव में रहने वाले तरह-तरह के लोगों को देखता है और उनका चित्र उहेरता है ×××× प्रयोगवादी कवि इतना आत्मस्थ और अहंलीन रहता है कि उस का ध्यान आदम के इन सांचों की और जाता ही नहीं।" [4]

प्रकृति से आत्मीय लगाव और जुड़ाव ही वह मूल कारण है; जो ग्रामीण जीवन को पर्यावरण का संरक्षक बनाता है। ग्रामीण जीवन शैली में जमीन, प्रकृति, पर्यावरण और पशु-पक्षियों के प्रति संरक्षण का भाव रचा-बसा है। पश्चिमी देशों के अनुकरण में विकास के जिस भौतिकतावादी मॉडल को अपनाया गया है, वह प्रकृति को नुकसान पहुँचा रहा है। स्थानीयता की जगह केवल भौतिक संसाधनों या तकनीकी विकास को ही केंद्र में रखा गया है। सांस्कृतिक, संवेदनात्मक विकास और पर्यावरण की चिंताएँ पीछे छूट गई हैं–

"सच्चाई यह है
कि अपनी त्वचा के भीतर
मैं आज भी इतना वानस्पतिक हूँ
कि जब भी मेरे माथे पर
गिरती है ओस
मेरे भीतर कुछ हो जाता है बेचैन
उससे बात करने के लिए" [5]

गाँव के जीवन की विशेषता है– सामूहिकता की भावना का होना। यह भावना गाँव को गाँव बनाती है, लोगों को एक दूसरे से जोड़ती है। व्यक्तिवाद, अकेलापन और तनाव शहरों की समस्याएँ समझी जाती रही हैं। भारत के गाँव भारतीय संस्कृति के वाहक हैं। वर्तमान समय में, बाजार और भूमंडलीकरण के प्रभाव में गाँवों की सांस्कृतिक पहचान ख़त्म होती जा रही हैं। तथाकथित पश्चिमी आधुनिकता की अंधी नक़ल के परिणाम; पारंपरिक जीवन शैली से कटाव और रिश्तों में अलगाव के रूप में सामने आए हैं। 'दीप–दान' कविता दीप-दान से जुड़ी सांस्कृतिक और भावनात्मक सोच का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ 'आँगन कुछ कहता है'–

"एक दिया वहाँ जहाँ धवरा बँधता है,
एक दिया वहाँ जहाँ पियरी दुहती है,
एक दिया वहाँ जहाँ अपना प्यारा झबरा
दिन–दिन भर सोता है××××
एक दिया इस चौखट,
एक दिया उस ताखे
एक दिया उस बरगद के तले जलाना;
जाना, फिर जाना"[6]

यहाँ कविता में बताया है कि ग्रामीण जीवन शैली में मानवेतर प्राणियों और प्रकृति को कितना महत्त्वपूर्ण माना गया है। इनके लिए सम्मान स्वरूप त्योहारों, पूजा, उपवास के अवसरों पर दीप–दान करने की परम्परा रही है। कवि प्रिय को एक दिया वहाँ जलाने को कहता है, जहाँ 'उड़ते आँचल से गुड़हल की डाल बार-बार उलझ जाती है' और एक दिया वहाँ 'जहाँ नयी–नयी दूबों ने कल्ले फोड़े हैं, एक दिया वहाँ 'जहाँ नन्हे गेंदे ने पहली ही पंखड़ी खोली है', 'एक दिया वहाँ, जहाँ गगरी रखी है', 'एक दिया इस चौखट', 'एक दिया उस बरगद के तले जलाना' भारतीय संस्कृति की विशिष्टता रही है। प्रकृति और पर्यावरण से लगाव और उन्हें बचाने की चिंता कविताओं में दिखाई देती है।

लोकजीवन से गहरे लगाव के कारण वहाँ से जुड़े लोकगीतों, मुहावरों, लोकलय, अनुभवों और शब्दों को कविता में पिरोया है–

"मुझे एक बार
खूब लाल पक्षी जैसा शब्द
मिल गया था गाँव के कछार में
मैं उसे ले आया घर"[7]

किसान के बिना गाँव अधूरा है। यदि गाँव; भारत की आत्मा है, तो गाँव की आत्मा है– किसान। किसानों की अपनी जीवन शैली और परम्पराएँ ऐसी हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही हैं। इन परम्पराओं में लोकजीवन की संस्कृति, ज्ञान और विचारों को सहेजा गया है–

"मेरे बेटे
कुँए में कभी मत झाँकना ××××
हरा पत्ता
कभी मत तोड़ना
और अगर तोड़ना तो ऐसे
कि पेड़ को जरा भी न हो पीड़ा
रात को रोटी जब भी तोड़ना
तो पहले सिर झुकाकर
गेहूं के पौधे को याद कर लेना
अगर कभी लाल चींटियाँ
दिखाई पड़े
तो समझना आंधी आने वाली है" [8]

किसानी जीवन का आधार है– मानसून की बारिश। जब समय पर और पर्याप्त बारिश होती है तो खेतों में हरियाली छा जाती है और किसान के चेहरे पर मुस्कान खिल उठती है। उस की आशाएँ, उम्मीदें बारिश पर टिकी होती हैं। लेकिन बारिश का अभाव किसानों के जीवन में बहुत सारे दुःख लेकर आता है। खेती पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था वर्षा पर ही निर्भर रहती है, ऐसे में मानसून विफल हो जाये तो पूरा संतुलन बिगड़ जाता है। वैसे तो अकाल गाँव और शहर दोनों के लिए संकटपूर्ण होता है, लेकिन ग्रामीण जीवन में मूलभूत सुविधाओं की कमी कमी उसे और भी विकट बना देती है। किसान के लिए कवि ने लिखा है कि 'वह एक ऐसा जानवर है जो दिन भर भूसे के बारे में सोचता है और रातभर ईश्वर के बारे में। अकाल पर लिखी यह कविता उल्लेखनीय है–

"भयानक सूखा है
पक्षी छोड़कर चले गये हैं
पेड़ों को
बिलों को छोड़कर चले गये हैं चींटे / चींटियाँ ××××
मवेशी खड़े हैं
एक-दूसरे का मुँह ताकते हुए" [9]

© 2025, SIJMR All Rights Reserved

केदारनाथ सिंह के समकालीन कवि नागार्जुन की कविता 'अकाल और उस के बाद' में भी अकाल की विभीषिका और उस के बाद के मंजर को दिखाया गया है, जहाँ 'चूल्हा रोता है' और 'चक्की उदास' है, 'कानी कुतिया' और 'कौए' अर्थात् पशु-पक्षी अकाल में दुखी हैं।

प्रेमचंद की कहानी 'पूस कि रात' अंग्रेजी शासन में पिसते किसानी जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। स्वावलंबी किसान से मजदूर बनते जाने की कहानी है– 'पूस की रात'। प्रेमचंद की कहानी 'पूस कि रात' को आधार बनाकर लिखी गई कविता 'पूस की रात : पुनश्च' में इस कहानी की विषय–वस्तु की भव्यता, वर्तमान में प्रासंगिकता और पवित्रता को प्रकट किया गया है। बाजार के दबाव में किसान यदि आत्म-हत्या करने को मजबूर हो रहे है, तो यह व्यवस्था की संवेदनहीनता ही कही जाएगी –

"तो पाठकगण, इस तरह ख़त्म हुई
बीसवीं शताब्दी के
एक पूस के महीने की
वह लम्बी–अथाह महाभारत जैसी रात
और जब सुबह हुई
तो गाँव वालों ने देखा
कोहरे से निकलकर एक पतली–सी पगडण्डी
पर
युधिष्ठिर और उनका कुत्ता
दोनों हिमालय से वापस आ रहे हैं
बर्फ ने उन्हें गलाने से इनकार कर दिया था"

यहाँ 'युधिष्ठिर और उनका कुत्ता' एक संकेत है, जो यह बताता है कि सर्दी की ठंडी रात में पुराना फटा हुआ कंबल लपेटे फसल को बचाने के लिए प्रयासरत हल्कू जैसे किसानों की ठण्ड से लड़ाई किसी महाभारत के युद्ध से कम नहीं है। 'बोझे' कविता में किसानी जीवन का पूरा परिवेश है, साथ में 'बोझों' के कम होते जाने की चिंता भी है। कविता में बताया है कि गाँव के जीवन का एक सामाजिक–आर्थिक तानाबाना रहा है– "फसल कट चुकी / बोझे बांधे जा रहे हैं ×××× और लो / अब बंध चुके बोझे / बंध चुका बहुत कुछ / जो गंध और हँसी की तरह फैला हुआ था ×××× मैं उन्हें देखता हूँ / और हो जाता हूँ परेशान / क्योंकि बोझे अब धीरे-धीरे / कम होते जा रहे हैं" [11]

किसान का खेती से विरक्त होते जाना आर्थिक नीतियों की विफलता है। खेती को बाजार के भरोसे छोड़ देने का परिणाम 'दाने' कविता में दिखाया गया है। किसानों के असंतोष की अभिव्यक्ति बार-बार होने वाले किसान आन्दोलनों के रूप में देखी जा सकती है। मुक्त बाजार में किसान के अनाज का मूल्य कौन लगा रहा है ? किसान की नियति क्या हो गयी है ? मंडियाँ किस तरह शोषण का प्रतीक बन चुकी हैं ?

'दाने' कविता में दाने कहते हैं –

"नहीं
नहीं हम मंडी नहीं जायेंगे
खलिहान से उठते हुए
कहते हैं दाने
जायेंगे तो फिर लौटकर नहीं आयेंगे
जाते जाते कहते जाते हैं दाने" [12]

गाँव में पित्रसत्ता की जड़ें गहरी हैं। ग्रामीण स्त्रियों का जीवन पुरुषों की तुलना में अधिक संघर्षशील होता है। वे अपने घर, परिवार और खेतों तक ही सीमित रहती हैं। उनके आंसू अदृश्य ही रह जाते हैं। ग्रामीण मेहनतकश औरतें कड़ी धूप, बारिश और ठण्ड में, खेतों में काम करते-करते भी लोकगीत गाती रहती हैं। यह उनकी जिजीविषा को दिखाता है। गाँव में मजदूर-परिवारों की औरतों का जीवन कितना अभावग्रस्त रहा है, इसे स्वयं कवि ने अपने गाँव में देखा था। ग्रामीण स्त्री जीवन पर लिखी बहुत ही मार्मिक कविता है–

'घुलते हुए गलते हुए'
"सहसा बौछारों की ओट में
दिख जाती है एक स्त्री
उपले बटोरती हुई।
बूंदों की मार से
जल्दी-जल्दी उपलों को बचाने कि कोशिश में
भींगती है वह
× × × × ×
स्त्री को बोछारों में
धीरे-धीरे घुलते हुए
गलते हुए देखता हूँ।"[13]

गाँव में जातिवाद की जड़ें अधिक गहरी हैं। 'जगरनाथ' कविता हजारों वर्षों से गाँव में जड़ीभूत जाति व्यवस्था के जाल में पिसते समाज की सचाई को दिखाती है। 'जगरनाथ' एक वास्तविक जीवन का पात्र है, जो कवि का बचपन का मित्र था। "मैं जिसे जगन्नाथ कह रहा हूँ, वह गाँव के लोगों की जबान पर असल में 'जगरनाथ' था– यानी तत्सम से गिरा हुआ एक धुल-सना तद्भव ×××× हमारी भाषा में वर्ण–व्यवस्था की जड़ें किस तरह घुसी हुई हैं, इस पर प्रायः विचार नहीं किया गया है। कभी किया जायेगा तो 'जगरनाथ' जैसे असंख्य मामूली जनों के नामों के भीतर से एक ऐसी दुनिया झाँकती दिखाई पड़ेगी, जिसका सामना करने के लिए अतिरिक्त साहस की जरुरत होगी।"[14]

गाँव से पलायन गाँव की एक बड़ी समस्या है। इस के बहुत-से कारण हैं। भूमंडलीकरण के बाद से ग्रामीण जीवन शैली पर बाजार का आक्रमण हुआ है। लोग शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा सुविधाओं, अवसरों और अन्य अनेक कारणों से गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गाँव के गाँव उजड़ते जा रहे है–

"वे चली जा रहीं थी
स्वाद और नींद से लदी बैलगाड़ियाँ ××××
वे हमेशा इसी तरह जाती थीं
बस्ती से शहर की ओर
कुछ-न-कुछ ढोती हुई
और अपने हिस्से की जमीन
लगातार-लगातार खोती हुई बैलगाड़ियाँ"[15]

© 2025, SIJMR All Rights Reserved

ग्रामीण जीवन का प्रतीक बैलगाड़ियाँ ‘स्वाद और नींद’ से लदी हैं। यहाँ ‘स्वाद’ से तात्पर्य अनाज, दूध, घी, फल, सब्जियां आदि संसाधनों से है और ‘नींद’ से आशय गाँव की सहज और सुकून भरी मेहनतकश जिन्दगी से है, जो गाँव से शहर की तरफ जा रहे हैं। इस प्रकिया में गाँव ‘अपने हिस्से की जमीन लगातार खो रहे हैं’ अर्थात् संसाधनों का यह एक–तरफा प्रवाह है। गाँव से जो कुछ जाता है, उस के बदले में कुछ लौटता नहीं है । यह पूंजीवादी आर्थिक नीतियों की देन है, जहाँ लाभ के केंद्र बड़े–बड़े शहर बन गये हैं और गाँव केवल उनकी आपूर्ति के साधन। इनके उजड़ने से शहरों पर दबाव भी बढ़ा है। वहाँ बस्तियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। जो लोग आत्म-निर्भर जीवन जीते आए थे, वे शहरों में आकर मजदूर बनते ज़ा रहे हैं। गाँव की पहचान और संसाधन लुट रहे हैं। कवि त्रिलोचन ने भी गाँव के उजड़ने और शहरों की ओर पलायन पर लिखा है–

‘भोरई केवट के घर
मैं गया हुआ था बहुत दिन पर
बाहर से बहुत दिन बाद गाँव आया था
पहले का बसा गाँव उजड़ा–सा पाया था”[16]

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि केदारनाथ सिंह की कविताएँ गाँव को समग्रता में प्रस्तुत करती हैं। गाँव और शहर का द्वंद्व और जीवन दृष्टि में अंतर की अभिव्यक्ति इनकी कविताओं में देखी जा सकती है। अंत में रेणु के शब्दों में इनमें ‘फूल भी है तो धूल भी है’।

सन्दर्भ-सूची

1. केदारनाथ सिंहः ‘कब्रिस्तान में पंचायत’, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 33 पहला संस्करण, 2003.
2. केदारनाथ सिंहः ‘उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 10, चौथा संस्करण, 2019
3. केदारनाथ सिंहः ‘उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 10, चौथा संस्करण, 2019.
4. नामवर सिंहः ‘आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां’, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 76, संस्करण, 2011.
5. केदारनाथ सिंहः ‘तालस्ताय और साइकिल’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 41, संस्करण, 2019.
6. केदारनाथ सिंहः ‘अभी बिलकुल अभी’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 50-51, दूसरा संस्करण, 2020.
7. केदारनाथ सिंहः ‘अकाल में सारस’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 101 दूसरा संस्करण 1990.
8. केदारनाथ सिंहः ‘अकाल में सारस’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 18 दूसरा संस्करण, 1990.
9. केदारनाथ सिंहः ‘अकाल में सारस’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 20, दूसरा संस्करण, 1990.
10. केदारनाथ सिंहः ‘तालस्ताय और साइकिल’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 30, तीसरा संस्करण, 2019.
11. केदारनाथ सिंहः ‘अकाल में सारस’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 20, दूसरा संस्करण, 1990 ई.
12. केदारनाथ सिंहः ‘अकाल में सारस’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 79, दूसरा संस्करण, 1990.
13. केदारनाथ सिंहः ‘अकाल में सारस’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 49, दूसरा संस्करण, 1990.
14. केदारनाथ सिंह : ‘स्मृति में जीवन’, संपादक : संध्या सिंह । रचना सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 125, पहला संस्करण, 2022
15. केदारनाथ सिंह : ‘बाघ’, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 4, दूसरा संस्करण, 1998.
16. त्रिलोचन : ‘प्रतिनिधि कविताएँ’, संपादक : केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या, 74 संस्करण 2006.

© 2025, SIJMR All Rights Reserved